International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 19-07-2022, Accepted: 04-08-2022, Published: 20-08-2022
Volume 8, Issue 4, 2022, Page No. 99-102

हिन्दी कहानियों में वृद्ध संघर्ष

पुष्पा देवी
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, फ़तेहचन्द महिला महाविद्यालय, हिसार, हरियाणा, भारत

सारांश
वृद्धावस्था मानव जीवन का अन्तिम पड़ाव है। जीवन के इस अन्तिम पड़ाव तक आते–आते मानव थक–सा जाता है। उसके अंग शिथिल पड़ने लगते हैं। वह शारीरिक व मानसिक दोनों रूपों से कमजोर हो जाता है। इस स्थिति में घर–परिवार के लोग उसकी उपेक्षा करने लगते हैं, जिससे वे अपना आत्मविश्वास और आत्मसम्मान खो देते हैं और भयभीत होकर जीवन व्यतीत करते हैं। हिन्दी कथा साहित्य में ऐसी अनेकों कहानियाँ हैं जिसमें वृद्धों का संघर्ष चित्रित किया गया है।

मूल शब्दः वृद्ध, कहानी, माँ, बाप, संतान, अकेलापन, दुर्व्यवहार, संघर्ष

प्रस्तावना
वृद्धावस्था उम्र बढ़ने की एक विकास प्रक्रिया है। जिससे कोई भी जीव नहीं बच सकता। इसकी शुरूआत जन्म लेते ही शुरू हो जाती है। एक–एक दिन करके उम्र बढ़ती जाती है। पहले शैशवावस्था आती है जिसमें हम माता–पिता की गोद में बड़े लाड़ो से पलते हैं। दूसरी अवस्था किशोरावस्था है, किशोरावस्था के दिन बड़े स्वर्णिम होते हैं। इस अवस्था में हम ऊर्जावान बनकर आसमान में पंख लगाकर उड़ने की ताकत रखते हैं। लेकिन सबसे कष्टप्रद अवस्था वृद्धावस्था है। इस अवस्था में शरीर के अंग शिथिल पड़ जाते हैं। मनुष्य ऊर्जा विहीन होकर अपनी संतान पर निर्भर हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य का शरीर काम करने के लायक नहीं रहता है इसलिए इसे जीवन का अन्तिम पड़ाव माना जाता है। स्वाति तिवारी के अनुसार – वृद्धावस्था जीवन का समान्य घटना क्रम है एवं प्राकृतिक संतुलन की अनिवार्यता भी शरीर के विभिन्न अंगों की संचित कार्य क्षमताओं में धीरे–धीरे होने वाली कमी से सम्बन्धित है।[1]

आज का वृद्ध इस अंतिम पड़ाव को अभिशाप मानने लगा है क्योंकि वह पूरी जिन्दगी मेहनत, मजदूरी करके अपने बच्चों को पढ़ाता–लिखाता है, उन्हें बेहतर जिन्दगी देने की कोशिश में लगा रहता है, शादी–ब्याह करके अपने कर्त्तव्य को पूरा करता है फिर भी संतान उसकी उपेक्षा करती है। इस पड़ाव में वृद्धों का अपनों से स्नेह, सम्मान की आवश्यकता रहती है परन्तु आज की भौतिकवादी चकाचौंध में नवयुवक उपयोगितावादी संस्कृति को अपनाने लगे हैं। अब माता–पिता उनके उपयोग की वस्तु नहीं हैं। उनके लिए काम करने के लायक नहीं हैं इसलिए आज की स्वार्थलोलुपता संतान अपने माता–पिता को या तो वृद्धाश्रम भेज देती है या फिर उनके साथ अमानवीय व्यवहार करते हैं। वृद्धों की विवशता, मनोव्यथा, अकेलापन, शारीरिक दुर्बलता को अनेक साहित्यकारों ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। प्रेमचन्द की कहानी बूढ़ी काकी, भीष्म साहनी की चीफ की दावत, उदय प्रकाश की छप्पन तोले का करधन, उषा प्रियवंदा की वापसी, मालती जोशी की कहानी यशोदा माँ, ज्ञानरंजन की पिता, सूर्यबाला की कहानी सांझवाती आदि ऐसी कितनी ही कहानियाँ हैं जिनमें वृद्धों का संघर्ष चित्रण हुआ है।

भीष्म साहनी की कहानी 'चीफ की दावत' में माँ का त्याग और बेटे की उपेक्षा दिखाई गई है। इस कहानी के माध्यम से लेखक माँ की पीड़ा को उकेरना चाहता है। माँ अपने बेटे–बहू के लिए बोझ बन गई है, जिस बेटे को माँ ने बड़े जतन से पाला, आज वही बेटा माँ को बोझ समझकर उसी की उपेक्षा करता है। कहानी का आरम्भ तब होता है जब शामनाथ नाम का आदमी अपने प्रमोशन के लालच में एक अंग्रेज चीफ को अपने घर दावत पर बुलाता है। वह उस अंग्रेज अफसर के सामने अपनी बूढ़ी अनपढ़ माँ को दिखाना नहीं चाहता।

जैसे कि :– शामनाथ सिगरेट मुहँ में रखे, सिकुड़ी आँखों से श्रीमती के चेहरे की ओर देखते हुए पल भर सोचते रहे, फिर सिर हिलाकर बाले, ''नहीं, मैं नहीं चाहता कि उस बुढ़िया का आना–जाना यहाँ फिर से शुरू हो। पहले ही बड़ी मुश्किल से बन्द किया था। माँ से कहे कि जल्दी ही खाना खा के शाम को ही अपनी कोठरी में चली जाए। मेहमान कहीं आठ बजे आयेंगें। इससे पहले ही अपने काम से निबट लें।''[2]

अपने बेटे शामनाथ को पढ़ाने में माँ ने अपने जेवर तक बेच दिये थे, आज वही बेटा किसी अफसर के सामने अनपढ़ माँ को अंग्रेजी बोलने को कहता है। माँ को बहुत बुरा लगता है। माँ सहम सी जाती है।

जैसे कि :– कहो माँ, ''मैं ठीक हूँ, खैरियत से हूँ।''

माँ कुछ बड़बड़ायी/माँ कहती है, मैं ठीक हूँ। कहो माँ, हौ डू यू डू ।'' माँ धीरे–से सकुचाते हुए बोली– हौ डू डू'' /, एक बार फिर कहकहा उठा ।

x x x x

साहब अपने हाथ में माँ का हाथ अब भी पकड़े हुए थे, माँ सिकुड़ी जा रही थी। साहब के मुँह से शराब की बू आ रही थी।''[3]

इतना ही नहीं शामनाथ, इतना स्वार्थी हो गया कि अपने प्रमोशन के लिए अपनी बूढ़ी माँ को गीत गाने के लिए एवं फुलकारी बनाने के लिए भी मजबूर करता है।

इस कहानी के माध्यम से लेखक ने एक बेटे की माँ के प्रति उपेक्षा एवं स्वार्थ लोलुपता को व्यक्त किया है। एक माँ है जो हर हाल में अपनी संतान का भला चाहती है। चाहे उसकी संतान उसे कितना भी दुख दें। यह वर्तमान समय की विडम्बना है जिसे लेखक ने वास्तविकता के साथ प्रस्तुत किया है।

उषा प्रियवंदा की कहानी 'वापसी' एक ऐसी व्यक्ति की कहानी है, जो जिन्दगी भर अपने घर–परिवार, पत्नी से इसलिए दूर रहता है ताकि वे सब अच्छा जीवन व्यतीत करे। गजाधर बाबू पैंतीस साल की नौकरी के बाद रिटायर होकर अपने बीबी बच्चों के पास जा रहे हैं। इन वर्षों में अधिकांश समय उन्होंने अकेले रहकर काटा था। उन अकेले क्षणों में उन्होंने इसी समय की कल्पना की थी, जब वह अपने परिवार के साथ रह सकेंगें।[4]

इसी आशा के साथ वे पैंतीस साल अकेले रहकर जीवन व्यतीत करते हैं ताकि उनके बच्चे और पत्नी बड़े शहर में रह सकें एवं बच्चे अच्छी पढ़ाई कर सकें। क्योंकि गजाधर बाबू को नौकरी के कारण छोटे–छोटे शहर एवं गाँव में रहना पड़ता था।

लेकिन जब वे इतने सालों बाद रिटायर होकर अपने घर पहुँचते हैं तो किसी को उनके आने की खुशी नहीं हुई। बल्कि उनके आने से सभी परेशान हो गए। यहाँ तक गजाधर की पत्नी भी उनके आने से खुश नहीं थी। वह तो उन लोगों की जरूरत पूरा करने का एक माध्यम थे। अपने प्रति सभी की उपेक्षापूर्ण व्यवहार देखकर वह बहुत दुःखी होते हैं और एक दिन वे घर से जाने का निर्णय कर लेते हैं और अपनी पत्नी से कहते हैं, ''मुझे सेठ रामजीमल की चीनी मिल में नौकरी मिल गयी है। खाली बैठे रहने से तो चार पैसे घर में आएँ, वहीं अच्छा है। उन्होंने तो पहले ही कहा था, मैंने ही मना कर दिया था। फिर कुछ रूककर जैसे बुझी हुई आग में एक चिंगारी चमक उठी। उन्होंने धीमे स्वर में कहा, ''मैंने सोचा था कि बरसों तुम सबसे अलग रहने के बाद, अवकाश पाकर परिवार के साथ रहूँगा। खैर परसों जाना है। तुम भी चलोगी।'' ''मैं ?'' पत्नी ने सकपकाकर कहा, ''मैं चलूँगी तो यहाँ का क्या होगा? इतनी बड़ी गृहस्थी, फिर सयानी लड़की ...।'' बात बीच में काट गजाधर बाबू ने थके हताश स्वर में कहा, ''ठीक है, तुम यहीं रहो। मैंने तो ऐसे ही कहा था'' और गहरे मौन में डूब गये।

गजाधर बाबू के चले जाने के बाद सभी बहुत खुश हो गये, यहाँ तक उनकी पत्नी भी खुश हो जाती है और अपने बड़े बेटे नरेन्द्र से कहती है, ''अरे नरेन्द्र, बाबू की चारपाई कमरे से निकाल दें। उसमें चलने तक की जगह नहीं है।''[5]

आज की युवा पीढ़ी वृद्धों को अपने ऊपर बोझ समझती है यदि वृद्ध उनके काम के हैं, उनके जरिए कुछ पैसा आता है तो ठीक है वरना वो उन्हें अपने ऊपर थोपा हुआ अनुभव करते हैं। अनास्था और तिरस्कार की यह प्रवृति आज के नवयुवकों को बड़ी तेजी से जकड़ती जा रही है।

मालती जोशी की कहानी 'यशोदा माँ' में लेखिका के जीजा जी उनसे मिलने आते हैं। वह बहुत थके हुए लग रहे हैं। उम्र का तकाज़ा तो खैर है ही, पर शरीर से अधिक मन से थके हुए हैं क्योंकि बरसो प्रतीक्षा करने के बाद उनके एक बेटा होता है वह भी विदेश में जाकर बस जाता है। दोनों पति–पत्नी यहाँ अकेले बुढ़ापा काट रहे हैं। लेखिका की बहन अपने बेटे, बहू और पोता–पोती के लिए कुछ न कुछ बनाती रहती हैं, जब भी कोई विदेश जा रहा होता है, उनके साथ विभिन्न प्रकार का सामान भेजती रहती हैं।

जैसे कि :– ''तुम्हारी दीदी को काम–धाम तो कुछ है नहीं। बैठे–बैठे यही पता लगाती रहती हैं कि कब कौन आ रहा है, कब कौन जा रहा है। फिर जुट जाती हैं आचार–मुरब्बा बनाने में। कभी पोते के लिए स्वेटर बुन रही है तो कभी बहू के लिए साड़ी काढ़ रही है।'' कितनी अच्छी बात है न। सात समंदर पार भी बच्चों को माँ की ममता का स्पर्श मिल रहा है। अरे, कौन कमबख्त उस स्पर्श के लिए तरस रहा है। जीजा जी एकदम उबल पड़े, उसने मुझसे एक बार क्या कहा था, जानती हो? बोला, पापा अब आप जिस–तिस के हाथ सामान भेजना बंद कीजिए। एक तो यहाँ दूरियाँ बहुत है, फिर हम लोग इतने बिजी रहते हैं कि सामान कलेक्ट करना मुश्किल हो जाता है। आप लोग नाहक परेशान होते हैं। यहाँ जरूरत की हर चीज़ मिल जाती है। वैसे भी हमारी खान–पान की आदतें अब बदल गई हैं। माँ से कहिएगा, बूढ़ापे में आँखों पर ज्यादा जोर न डालें, वे जो बच्चों के लिए स्वेटर्स भेजती हैं, यहाँ की ठंड में एकदम बेमानी है और नंदिता तो आजकल साड़ी पहनती ही नहीं ।[6]

आज के भौतिकवादी, उपयोगितावादी चकाचौंध में नवयुवक पश्चिमी सभ्यता में ढ़लता जा रहा है। उसको अपने माता–पिता के त्याग की कोई कद्र नहीं है। जबकि माता–पिता अपनी संतान को सुख देने में ही अपना जीवन सार्थक मानते हैं।

जैसे कि :– वह बेवकूफ औरत इसलिए जिन्दा है कि पोते–पोतियों के पोतड़े सीती रहे, बहू की रसोई के लिए मसाले कूटती रहे, बेटे के लिए मठरी और खुरमें बनाती रहे। मैं आजकल क्या करता हूँ, पता है? जब सामान देने जाता हूँ तो उन बच्चों से कह देता हूँ कि अगर तुम्हारा सामान ओवरवेट होने लगे तो सबसे पहले यह पार्सल उठाकर फेंक देना, हमें बताने की भी जरूरत नहीं है और वहाँ अगर कोई पंद्रह दिन तक सामान लेने न पहुँचे तो सब खा–पीकर खत्म कर देना, जरा भी संकोच मत करना।[7]

इस कहानी से पता चलता है कि माँ–बाप को अपनी संवेदनाओं को विराम देना होगा। मोह–माया छोड़कर, अपने लिए जीना होगा। आस–पास के सामाजिक कार्यों में व्यस्त रहकर वृद्धावस्था जैसा कठिन पड़ाव को पार करना होगा।

इस कहानी के माध्यम से पता चलता है कि आज के समाज में वृद्धों को अकेलेपन की त्रासदी को झेलना पड़ रहा है। वृद्धों को अपने परिवार की आवश्यकता है परन्तु अधिक सुख–सुविधा पाने के लालच में आज का नवयुवक विदेशों में जाकर बस गया। वह अपने बूढ़े माता–पिता की आत्मीयता से कोसों दूर जाकर वहीं के रंग में रंग कर रह जाता है। माँ–बाप उनको एक वस्तु लगती है और वे उनकी भावनाओं, दर्द और अकेलेपन को नहीं समझते।

उदय प्रकाश की कहानी 'छप्पन तोले का करधन' में वृद्धा के साथ हुए दुर्व्यवहार को चित्रित किया गया है। इस कहानी में दादी के पास छप्पन तोले का करधन होने की अफवाहें फैली हुई हैं। परिवार के सभी लोग उस करधन को पाने की

जिद के कारण दादी के साथ दुर्व्यवहार करते हैं और उसे ऐसे बन्द कोठरी में रहने के लिए मजबूर करते हैं जिसमें रोशनी की एक झलक भी नहीं पँहुच पाती ।

जैसे किः– ''जिस कोठरी में दादी शीशम की एक पुरानी खाट पर सोती रहती थी, उस कोठरी का नाम ''अंधियारी कोठरी'' रख दिया गया था। वह एक बहुत छोटा, संकरा और जमीन में धँसा हुआ अंधेरा कमरा था, जिसमें एक भी खिड़की नहीं थी। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा था, जिसकी चौखट इतनी नीची थी कि लगभग बैठकर उस दरवाजे से कमरे में उतरना पड़ता था। कमरे का फर्श जमीन की सतह से कम से कम डेढ़ बीता नीचे था वहाँ हमेशा अंधेरा होता था, दिन में भी। दादी कई दिनों बाद या कभी कभी कई महीनों बाद उस कमरे से बाहर निकलती थी। वे शायद कमरे में ही किसी कोने में पेशाब करती थी, क्योंकि अंधियारी कोठरी की बन्द गाढ़ी हवा में अमोनिया की तीखी गंध मौजूद होती। दादी के शरीर से भी ऐसी ही गंध आती थी।''[8]

परिवार के किसी भी सदस्य को दादी के प्रति स्नेह–भाव नहीं है। सभी को यह आस है कि दादी के पास छप्पन तोले का करधन है यदि दादी वह करधन परिवार को दे दे तो परिवार आर्थिक संकट से उबर सकता है परन्तु दादी करधन देने का नाम भी नहीं लेती जैसे कि अम्मा कहती है – अगर माँ जी (दादी) करधन दे दे तो यह घर अब भी बच सकता है, चाची कहती– ''मेरी बात गाँठ बांध लो, बुढ़िया जब मरेगी तो उसकी आंत से करधन निकलेगा। जीते–जी वह बताने से रही।'' अम्मा का चेहरा काला पड़ जाता –''भगवान किसी को ऐसी माया का रोग न दे कि वह किसी का न रह जाए।''[9]

इस करधन के कारण पूरा परिवार दादी को जीने नहीं देता। परिवार के सदस्यों के व्यवहार के कारण दादी ने कभी भी किसी से साफ–साफ ये नहीं बताया कि उसके पास कोई छप्पन तोले का करधन नहीं है। वह सभी को भ्रम में डाले रखती है। इस बात का पता इस संदर्भ में लगता है जैसे कि – ''रामे, जब तेरे पिता फिरंगी को मारकर फरार हुए थे, तब मेरे पास दस तोले सोना था। मैनें अपने तीनों छौनों को किस–किस तरह से पाला–पोसा, तुम दोनों भाईयों को पढ़ाया। चार तोला बचा था, जिसे मैंने दोनों बहुओं में बराबर–बराबर बाँटा। और तिस पर भी तुम सबने मिलकर मेरे साथ जो किया है बेटा, उसे भगवान ही नहीं, सारा गाँव देख रहा होगा।'' दादी रोने लगी थी, फिर कहा था– ''अभी तो बेटा, बहू दाल–भात ड्योढ़ी पर रख जाती है, करधन मैंने दे दिया तो फिर कौन–सी आस रह जाएगी? करधन हो कि न हो, वह मेरे लिए और तुम सबकी आस के लिए जरूरी है बेटा।''[10]

इस कहानी से पता चलता है कि इस घर की अवस्था बहुत अधिक मार्मिक है। घर अत्यधिक गरीबी से झूझ रहा है। घर के सभी सदस्यों को आस है कि यदि दादी छप्पन तोले का करधन दे तो परिवार की अवस्था सुधर जाए। लेकिन दादी भी अपने जिन्दा रहने के लिए, अन्न–पानी के लिए करधन को अपना हथियार बनाती है, जिसकी आस में उसकी बहूएँ उसको रोटी–तो दे देती हैं।

जैसे कि :– दादी दिन–भर में सिर्फ एक बार खाना खाती थी। जस्ते का एक बहुत पुराना तुचका–पुचका भगोना था, उसी में दाल–भात, चटनी, सूखी मिर्च डाल दी जाती और अम्मा उसे अँधियारी कोठरी में ड्योढ़ी पर रख आती थी। कई–कई बार तो कई दिनों तक हर रोज भगौना ज्यों का–त्यों भरा हुआ लौट आता।[11]

कभी कभी दादी से करधन पाने के लिए उन्हें प्रताड़ित किया जाता और उसे एक–एक महीने तक खाना नहीं दिया जाता। यदि खाना दे भी देते तो उसकी थाली में मिट्टी मिलाकर सामने रख दी जाती है। परिवार वाले हर क्षण इस इंतजार में रहते हैं कि कब दादी मरे और कब वह करधन को प्राप्त करे। इस प्रकार जब पूरा परिवार एक साथ होकर किसी निर्बल को प्रताड़ित करता है तो यह बात भारतीय मूल्यों पर तीव्र कुठाराघात है।

सूर्यबाला की कहानी 'साँझवाती' बहुत ही मार्मिक कहानी है। इस कहानी में वृद्ध दम्पति अकेलेपन की त्रासदी को झेल रहे हैं। उन दोनों पति–पत्नी में बहुत प्रेम है। वे अपने बहू–बेटों के पास रहते हैं। पति एक बेटे के पास रहता है तो पत्नी दूसरे बेटे के पास। दोनों बेटों ने माँ–बाप का बटवारा कर रखा है। जवानी के दिन साथ बिताये परन्तु बुढ़ापा जैसी अवस्था में बेटों ने अलग–अलग कर दिया। दोनों एक–दूसरे से मिलने के लिए तड़पते रहते हैं, जब भी अवसर मिलता है वे एक–दूसरे से मिलकर अपने अकेलेपन का दुःख सांझा करते हैं।

जैसे कि :– ''जस्सी कैसा है?''/ चंगा ! परसों टोकियो जा रहा है। तुझे सत श्री अकाल बोल है।''/ ओर बहू? – ''सेकेट्री बन गई क्लब की। कल बोलती थी, पप्पा जी अब बौत बिजी रैना होगा। कित्ते सारे कैंप, वर्कशॉप, आपरेशन, नसबंदी।''/काके/ गया ट्रेनिंग पै/ रिश्ते आ रहे हैं। छँटाई पे छँटाई हो रही है''/ अच्छा ! काके की शादी हो गई तो आप...../ किचन से बाहरी तरफ जो स्टोर है, उसकी बात चल रही है। कल जस्सी की बहू को बोलते सुना...../ ''वह तो कबाड़ो से अँटा पड़ा है....''/इतना नहीं कि एक कबाड़ और न आ सके...../ रुंधे गले का सैलाब होंठों ने भींचा, सम्हाला ।[12]

वे दोनों बेटा–बहू का व्यवहार देखकर छटपटाते रहते हैं इतनी पीड़ा के बावजूद भी वह अपने बच्चों की ही चिंता करते हैं, उनकी बिखरी गृहस्थी को समेटने की कोशिश करते हैं।

निष्कर्ष

उपर्युक्त हिन्दी कहानियों में वृद्धों की समस्या उनका अकेलापन, उनके प्रति होने वाला दुर्व्यवहार, उनके मन की विभिन्न अवस्थाओं को बहुत ही मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। अपनी संतान के द्वारा छोटी–छोटी बातों पर अपमानित होना, उनके लिए बहुत ही दर्दनाक स्थिति है। शारीरिक एवं मानसिक रूप से निर्बल होने के कारण, छोटो द्वारा अपमानित होने के कारण वो अपना मानसिक संतुलन खो देते हैं और भयभीत होकर जीवनयापन करते हैं। इसी के साथ वे अपना आत्मविश्वास खोकर नरकीय जीवन जीते हैं।

इस प्रकार, हिन्दी कथा साहित्य में अनेकों कहानियां हैं जिसमें वृद्धों की समस्याओं को उकेरा गया। यदि हमें इस समस्या से निजात पाना है तो सबसे पहले हमें स्वयं को सुधरना होगा। उसी के बाद हम अपनी संतानों को अच्छे संस्कार एवं जीवन मूल्य से अवगत करवा सकते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ –

1. तिवारी स्वाति, अकेले होते लोग, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, प्रं सं –2006 पृ० सं. 31
2. भीष्म साहनी, प्रतिनिधि कहानियाँ, राजकमल पेपरबैक्स नई दिल्ली, प्र० सं. –1988 पृ० संख्या 15
3. वहीं पेज नं. 19–20
4. उषा प्रियवंदा, जिन्दगी और गुलाब के फूल, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, सातवाँ संस्करणः 1998 पेज नं० 97
5. वहीं पृ० सं. 104
6. मालती जोशी, रहिमन धागा प्रेम का, परमेश्वरी प्रकाशन, संस्करण–2005 पृ० संख्या 75
7. वहीं पृ० संख्या 75–76
8. उदय प्रकाश, तिरिछि, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र० सं. 1989, पृ संख्या 48
9. वही पृ० 54
10. वही पृ० 58
11. वही पृ० 51
12. सूर्यबाला, सांझवाती, किताबघर, नई दिल्ली, प्र० संस्करण–1995 पृ० संख्या 83